प्रो. हरिमोहन की समीक्षा-दृष्टि

-सोनिका

समकालीन साहित्यकारों में प्रोफेसर हरिमोहन का एक विशिष्ट स्थान है। समकालीन हिन्दी कविता, कहानी उपन्यास, समीक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने अपना अनन्य योगदान दिया है। माँ भारतीय के मन्दिर में जिन कृतियों का नैचेद्य लेकर उन्होंने अनन्यार्चना की है उनमें मौलिक और अन्वेषण एवं समीक्षापरक सभी प्रकार की कृतियाँ सम्मिलित हैं। उन्होंने कुल मिलाकर 34 कृतियाँ हिन्दी जगत् को दी हैं। इनमें से 05 कविता-संग्रह, 04 कहानी-संग्रह, 02 उपन्यास, 04 यात्रावृत्तांत-संकलन/पर्यटन विषयक पुस्तकें, 10 हिन्दी साहित्य पर शोधपरक एवं समीक्षा-ग्रंथ, 14 प्रयोजनमूलक हिन्दी, सूचना प्रौद्योगिकी एवं पत्रकारिता विषयक पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पाठ्यपुस्तकों का सम्पादन भी किया है। जहाँ तक प्रो. हरिमोहन की समीक्षा दृष्टि के विश्लेषण का प्रश्न है, इसके लिए हमें उनके हिन्दी साहित्य पर शोधपरक एवं आलोचनात्मक ग्रंथों तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित चालीस से अधिक लेखों से गुजरना होगा। उनके ऐसे प्रमुख ग्रंथ हैं- मध्यकालीन काव्य: पहचान और परख, प्राचीन कवि: मूल्यांकन के विविध आयाम, प्रतिनिधि हिन्दी निबंधकार, भारतीय काव्यशास्त्र : परम्परा और मूल्यांकन, कालजयी कवि भवानी प्रसाद मिश्र, साहित्यिक विधाएँ: पुनर्विचार, सौन्दर्यशास्त्र, विज्ञान और कवि-प्रसिद्धियाँ, अग्निसागर से गुजरते हुए, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान, नव्यतर गद्य विधाएँ।

स्पष्ट है कि उन्होंने शास्त्रीय विवेचन अधिक किया है, किन्तु उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश करते हुए अपनी मौलिक मान्यताओं का भी रेखांकन किया है। वे परम्परा और आधुनिकता अथवा समकालीनता के सामंजस्य को मानवतावादी दृष्टिकोण से देखते हैं। लोक और शास्त्र का संतुलन करते हुए वे आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा उसकी चुनौतियों पर गम्भीरता से विचार करते हैं। इसी का प्रतिफलन है उनकी पत्रकारिता एवं सूचना प्रौद्योगिकी विषयक पुसतकें, जिनकी संख्या 10 है। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं- सूचना प्रौद्योगिकी एवं जनसंचार, आधुनिक जनसंचार और हिन्दी, रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, समाचार, फ़ीचर लेखन एवं सम्पादन कला, राष्ट्रीय एकता एवं हिन्दी पत्रकारिता, पर्यावरण और लोग अनुभव, मानव अधिकार और पर्यावरण संतुलन, सूचना प्रौद्योगिकी और विश्वभाषा हिन्दी। इन पुस्तकों में उनका हिन्दी भाषा तथा पत्रकारिता विषयक चिन्तन सर्वथा नूतन ढंग से सामने आया है। कहना न होगा कि हिन्दी में इस क्षेत्र में लेखन करने वाले बहुत ही कम विद्वान् हमारे पास हैं। सम्प्रति हम प्रो. हरिमोहन की समीक्षा-दृष्टि पर ही केन्द्रित रहेंगे। 'समीक्षा' का आशय है- सम्यक्+ईक्षा- अर्थात् भलीभांति देखना। इसी के समतुल्य 'समालोचना' और 'आलोचना' शब्द भी अपनाए गए हैं। किंचित अन्तर होते हुए भी प्राय: इन तीनों शब्दों को परस्पर थोड़े अन्तर के साथ प्रयोग किया जाता है। समालोचना शब्द- सम+आई+लोचना +आ-सम के रूप में व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ भी भली भाँति, आई= मर्यादा और लोचन= देखना मानते हुए सब प्रकार से भली भाँति देखना। [1] किया गया है। अर्थात् समग्र रूप में चारों ओर देखना या परीक्षण करना आलोचना है। किन्तु किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या, उसका मूल्यांकन आदि करना 'आलोचना' है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार ''आलोचक किसी कवि या लेखक की कृति को देखता या परखता है।'' 'परीक्षा' का अर्थ भी चारों ओर देखना हैं। आलोचना कवि या लेखक और पाठक के बीच की श्रृंखला हैं। अंग्रेजी Critic शब्द का अर्थ है अलग करना (To separte) जिससे निर्णय की बात का पता चलता है। [2] 'Criticisum' का हिन्दी अनुवाद आलोचना अपनाया गया है। अर्थ वही है- सम्यक् रूप से देखना अथवा परीक्षण करना। यही समीक्षा भी है।

यों तो आलोचना मनुष्य की प्रकृति में निहित है, किन्तु समीक्षा या आलोचना विभिन्न मनुष्य की विभिन्न कलात्मक अभिव्यक्तियों, जैसे साहित्य-सर्जना का विविध विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टियों को धारण करते हम उसका सम्यक् मूल्यांकन करना समीक्षा या आलोचना अथवा समालोचना कहलाता है। 'समीक्षा' के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि समीक्षा न्याय का विषय है, कल्पना का नहीं। इसमें तर्क की प्रधानता होती है। जैसा कि डॉ. दशरथ ओझा ने कहा है, ''इसमें मस्तिष्क पक्ष का अधिक आलम्बन लिया जाता है, हृदय पक्ष का कम और इसके द्वारा सत्य का निरूपण किया जाता है। संभावना का नहीं अत: समालोचन शास्त्र की ओर झुकता है। तार्किकता एवं विश्लेषण को अपना अस्त्र बनाने के कारण यह कला से नाता तोड़ता हुआ, विज्ञान से नाता जोड़ता ज्ञात होता है।'' इसके विपरीत डॉ. नगेन्द्र का मत है कि, ''आलोचना की आत्मा कला में है किन्तु इसकी शरीर रचना वैज्ञानिक है। आत्मा के कलामय होने का मूल अर्थ है कि आलोचना भी मूलत: आत्माभिव्यक्ति ही है।''

यहाँ लम्बे विमर्श का अवकाश नहीं है कि समीक्षा कला है अथवा विज्ञान। सच तो यह है कि यह एक शास्त्र है। किन्तु इसे निहित समीक्षकीय दृष्टि, विचार, मूल्य-निर्धारण और लेखकीय शैली इसे विशिष्ट शास्त्र बनाते हैं, जो साहित्य सर्जना और शास्त्र के बीच अवस्थित माना जा सकता है। **समीक्षा के तीन तत्त्व**-उपर्युक्त प्ररिप्रेक्ष्य में समीक्षा को प्रमुखत: तीन तत्त्व निर्धारित किए जा सकते हैं- विचार, भाव और शैली। विचार समीक्षा का प्राण तत्त्व है। विचार का लक्ष्य है- सत्य का बोध अथवा अन्वेषण। लेकिन शुष्क विचार समीक्षा के लिए घातक होता है। क्योंकि बिना अनुभूति के अद्वैत ज्ञान व्यर्थ है। इसलिए, जैसा कि डॉ. तारकनाथ बाली का मानना है, ''विचार अपने अत्यन्त शुष्क और नीरस रूप में भी तभी सार्थक हो सकता है जब उसके प्रति रागात्मक समर्पण होगा। बिना इस रागबंध के विचार व्यर्थ है।'' फिर भी समीक्षा मुख्यत: विचार-प्रधान विधा है। ऐसा विचार जिसका

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र हरियाणा

सम्बन्ध मात्र बुद्धि से नहीं अपितु हार्दिक अनुभूतियों से भी है। विचार का अन्वेषण और प्रतिपादन समीक्षा के लिए दोनों आवश्यक हैं। समीक्षा या आलोचना के क्षेत्र में भाववाद और बुद्धिवाद जैसे शब्द भ्रांति उत्पन्न करते हैं। वस्तुत: ये दोनों एक समग्र परिस्थिति के लक्षण हैं। दोनों संयुक्त रूप से परिस्थिति की विशिष्टता को सूचित करते हैं।

भाव-समक्षी का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व है। माना गया हे कि साहित्य का मूल तत्व भाव होता है। साहित्यिक कृति को मूल्यबोधक प्रतिमानों पर परखते समय समीक्षक अपनी सहज संवेदनशीलता से साहित्यकार की भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। इसलिए उसमें भावात्मकता का होना अपेक्षित है। इसके साथ ही कृति की सौन्दर्यानुभूति को परखने के लिए प्राय: वैयक्तिक प्रभावों का सहयोग भी लेना होता है, जिसके लिए भाव-तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं। प्रभाववादी या आत्मवादी समीक्षा-प्रणाली में तो यह अनिवार्य है।

शैली-समीक्षा का तीसरा केन्द्रीय तत्त्व है। साहित्य में आत्माभिव्यक्ति की प्रणाली या ढंग को शैली कहा गया है। शैली के द्वारा ही विचार और भाव सम्प्रेषित होते हैं। शैली का सौन्द्रय शब्द-योजना, वाक्य-विन्यास, रचना-शिल्प, बिम्ब-सृष्टि इत्यादि पर निर्भर है। इसके साथ ही शैली का एक और आधार तत्त्व है, वह है-संश्लेषण। शब्द के साथ अर्थ का, वाक्य के साथ विचार का संश्लेषण अनिवार्य है। विचार और भाव-शून्य शैली का कोई अर्थ ही नहीं होता।

दृष्टिकोण बनाम समीक्षा-प्रणाली

समीक्षा और दृष्टिकोण का गहन सम्बन्ध है। बिना दृष्टिकोण के समीक्षा कर्म प्राय: सम्भव ही नहीं है। और यह दृष्टिकोण स्पष्टत: किसी सिद्धान्त पर आधारित होता है। दृष्टिकोण को समीक्षा की प्रणाली भी कहा जाता है। वस्तुत: समीक्षा की प्रक्रिया किसी विशिष्ट दृष्टिकोण को लेकर चलती है और सिद्धान्त आधारित होने के कारण जहाँ मतवैभिन्य आता है, वहीं दृष्टिकोणों में अनेकरूपता आ जाती है। यही कारण है कि समीक्षा की अनेक प्रणालियों का जन्म होता रहता है। कुछ प्रचलित समीक्षा प्रणालियाँ है- प्रभावात्मक, अनुभावात्मक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, निर्णयात्मक, वैज्ञानिक, अभिव्यंजनवावादी, नैसर्गिक, जीवनवृत्तान्तीय, कार्यात्मक, क्रियात्मक, तात्त्विक, मार्क्सवादी, भौतिकवादी, शास्त्रीय, आत्मगत और व्याख्यात्मक आदि। इनमें सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और तुलनात्मक जैसे नामों के अतिरिक्त अब संरचनावादी एवं उत्तर आधुनिकतावादी समीक्षा भी जोड़ लिए जायें तो यह संख्या 25 के आस पास पहुँच जाती है।

प्रो. हरिमोहन की समीक्षा-दृष्टि

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आलोक में हम प्रो. हरिमोहन के समीक्षा-कर्म का संक्षेप में विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। सर्वप्रथम तो हम पाते हैं कि उन्होंने कुछ ग्रंथ काव्यशास्त्रीय लिखे हैं, कुछ व्यावहारिक समीक्षा विषयक। साथ ही उनके अनेक लेख मूल्यपरक तथा भाषा विज्ञान आधारित समीक्षा की श्रेणी में आते हैं। उनके द्वारा रचित भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र विषयक पुस्तकों के अतिरिक्त साहित्यिक विधाओं पर उन्होंने तीन ग्रंथों की रचना की है। इनमें से एक ग्रंथ साहित्य की सभी विधाओं तथा समीक्षा का संक्षिप्त सैद्धान्तिक विवेचन सामने लाता है। इससे भी अधिक उनका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं-साहित्यिक-विधाएँ पुनर्विचार। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 1997 में प्रकाशित इस ग्रंथ में उन्होंने साहित्यिक विधाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वे निरूपित करते हैं कि- ''साहित्य के रूप अनेक हैं। रचनाकार अपनी रुचि, अपनी प्रकृति, विषयवस्तु की आवश्यकता इत्यादि के अनुसार अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए किसी भी रूप का चुनाव कर सकता है। इन साहित्यिक रूपों को साहित्य की विधाएँ कहते हैं। ये अभिव्यक्ति के प्रकार हैं। इस परिभाषा निरूपण में उन्होंने शास्त्रीय समीक्षा को अपनाया है। अपने विववेचन में हरिमोहन जी ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए, लगभग उसी दृष्टि से काम किया है, जिस दृष्टि से डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास लिखा था। किन्तु उससे भी दो कदम आगे चलकर हरिमोहन जी ने इस पुस्तक में साहित्यिक विधाओं का एक नया वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह वर्गीकरण एक तरह से साहित्य की अनुवांशिकी (Genetics of Literatures) प्रस्तुत करता है। क्योंकि इसमें विधाओं को उनके आपसी रुधिर सम्बन्ध (Bold Relation) के आधार पर देखा गया है। लेखक ने कल्पना की है कि मानव की तरह साहित्यिक विधाओं में भी चार मूल रुधिर वर्ग हैं। (Blod Groups) A, AB, O तथा B; इनमें से A नाट्यवर्ग का, AB कतिवा वर्ग का O कथावर्ग का तथा B कथेतर गद्य वर्ग का सूचक है। यह आश्चर्यजनक संयाग है कि मानव में इन रुधिर वर्गों का जैसा प्राकृतिक नियम है, लगभग वैसा ही साहित्यिक विधाओं में भी देखने को मिलता है। इसी क्रम में उन्होंने सर्वथा नयी विधाओं पर पहली बार शास्त्रीय ढंग से विचार किया है। इसे और अधिक विस्तार के साथ उन्होंने अपनी नई समीक्षा पुस्तक नव्येतर गद्य विधाएँ (हरियाणा साहित्य अकादमी, 2007) में विवेचित करने की सफल चेष्टा की है।''

व्यावहारिक समीक्षा के उनके चार ग्रंथ महत्त्वपूर्ण हैं-मध्यकालीन काव्य : पहचान और परख, प्रतिनिधि हिन्दी निबंधकार, हिन्दी निबन्ध के आधार स्तम्भ और कालजयी कवि भवानी प्रसाद मिश्र। इनमें उन्होंने समीक्षा की सैद्धान्तिक प्रणाली के स्थान पर व्यावहारिक एवं कहीं-कहीं तुलनात्मक समीक्षा-प्रणालियों का अवलम्बन ग्रहण किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने मध्यकालीन हिन्दी काव्य के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया है। उनका मूल्यांकन स्पष्ट, तलस्पर्शी और जीवन मूल्यों पर आधृत है। इस सन्दर्भ में इस पुस्तक से मात्र एक उदाहरण पढ़ लेना ही पर्याप्त रहेगा। मध्यकालीन संत कवियों की माधुर्य चेतना पर विचार करते हुए वे लिखते हैं- ''दादू अपने परमात्मा को प्रियतम और स्वयं को प्रियतमा मानते हैं, उनमें परमात्मा के प्रति माधुर्य भाव है। उनकी आत्मा अपने प्रियतम की याद में व्याकुल है। उनके विरह विषयक उद्‌गार अत्यन्त मार्मिक हैं। प्रेम की तीव्रता, विरह की तड़पन और वेदना, संयोग की रसात्मकता, आत्मा की निरीहता और दैन्य आदि सभी भावों की मार्मिक अभिव्यंजना के साथ माधुर्यभाव की सरल स्वाभाविक एवं सरस सृष्टि अनुभव की वस्तु है। दादू के शिष्य सुन्दरदास जी ने निर्गुण निरंजन आत्मा तत्त्व पर भक्तिमार्गियों के सहृदयतापूर्ण गुणों का आरोप करके

उसके मन में सगुण बनाया है और उसकी पूजा का उपेदश दिया है। गरीब दास का प्रतियतम की कबीर के लाल की भाँति अपनल लाल सम्पूर्ण विश्व में अपने सौन्दर्य को व्याप्त किये हुए है। इसी तरह संत बुल्ला साहब की आत्मा भी परमात्मा को अपना पति मानती हुई उसी को और अपने को प्रियतमा के रूप में कल्पित करते हैं।''

इसी क्रम में हम उनके द्वारा किया गया प्रतिनिधि हिन्दी निम्बधकारों के कृतित्व का मूल्यांकन तथा स्वतंत्र रूप से डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के गद्य का मूल्यांकन पठनीय है। प्रतिनिधि हिन्दी निबंधकार पुस्तक में वे सर्वप्रथम तो शास्त्रीय अथवा सैद्धान्तिक समीक्षा दृष्टि को अपनाते हैं और इस दृष्टि से निबंध विधा का विवेचन प्रस्तुत करते हें, तदनन्तर वे व्यावहारिक समीक्षा के धरातल पर उतरकर निबंधकारों का मूल्यांकन करते हैं। बीच-बीच में तुलनात्मक समीक्षा की सहारा भी लेते चलते हैं। यथा-निबंधकार प्रतापनारायण मिश्र के गद्य शैली का विस्तृत विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हुए वे अपना मत इन पंक्तियों में सामने रखते हैं- ''विशेषताओं के अतिरिक्त उनके निबंधों में कुछ दोष भी हैं। लेकिन ये दोष उस युग के सामान्य दोष हैं। जैसे-विराम चिह्नों का प्रयोग न करना, कहीं-कहीं वाक्य लम्बे हो जाना, अश्लीलत्व एवं ग्रामीणत्व दोष इत्यादि। फिर भी मिश्र जी का भाषा पर अच्छा अधिकार है। अन्तत: कहा जा सकता है कि पं. प्रतापनारायण मिश्र की निबंध शैली और भाषा विषयानुकूल, आकर्षक और लोकप्रिय है। आत्मीयता, आकार-संकोच, भाषा का चटपटापन, उछलता उमंगभरा व्यक्तित्व, जवानी का फक्कड़पन और तेज उक्ति-चमत्मकार और व्यंग्य की बौछार आदि विशेषताएँ मिश्र जी को शक्तिशाली बिनंधकार प्रमाणित करती हैं। वास्तव में मिश्र जी भारतेन्दु युग के एक श्रेष्ठ निबंधकार थे। उनका निबंधकार के रूप में उभरा व्यक्तित्व उस युग के अन्य निबंधकारों में अलग ही पहचान रखता है।'' इसी तरह वे अपनी स्वतंत्र पुस्तक में एक स्थल पर लिखते हैं- ''आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल दोनों ही प्रबुद्ध समालोचक हैं। यह बात उनके निबंधों और अन्य कृतियों से स्वत: प्रमाणित है। गुरु-शिष्य ने अपनी गम्भीर निबंधों के माध्यम से मूलत: जिस समीक्षा-क्षेत्र को उर्वर बनाया, उसमें भक्तिकाव्य और आधुनिक काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास और जायसी, इन तीन महाकवियों की गहन और प्रामाणिक समीक्षा कर हिन्दी समालोचना के व्यावहारिक धरातल को मजबूत करते हैं, तो बड़थ्वाल जी ने निर्गुण काव्य और विशेषत: कबीर-साहित्य को निरभ्रम समीक्षा का मार्ग बनाया है। आधुनिक काव्य में छायावादी काव्य के मूल्यांकन में दोनों ही प्रवृत्त हुए हैं। आगे चलकर उन्होंने दोनों की समीक्ष-दृष्टि को अन्तर को विस्तारपूर्वक समझया है। डॉ. हरिमोहन के विविध साहित्यक पक्षों पर प्रकाशित अनेकानेक निबंधों एवं अनुसंधानपरक लेखों में उनकी समीक्षा-दृष्टि और भी अधिक चमकीले रूप में उभरकर सामने आई है। यथा, वे एक ओर रविदास की काव्य-भाषा का विश्लेषण करते हैं (सप्तसिन्धु, नवम्बर-1978), तो दूसरी ओर अनेक काव्यसिद्धान्तों का अन्वेषण कर उन्हें सामने लाते हैं। (पंजाब सौरभ, मई-1977) इसी तरह वे काव्य-बिम्ब की रचना-प्रक्रिया का सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत करते हैं। (सप्तसिन्धु-अप्रैल, 1977), प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताएँ और रचना-सिद्धान्तों का गहन विश्लेषणकरते हैं (हिन्दूस्तानी, 1981) या ललित निबंध के रचना तत्त्व और विकास को समझाते हुए सैद्धान्तिक समीक्षा को अपनाते है। वे मौलराम जैसे अल्पज्ञात कवि के काव्य पर लिखकर अपनी अन्वेषण वृत्ति का परिचय देते हैं। (राष्ट्रभाषा सन्देश, मई-1980) तो कवि श्रीराम शर्मा प्रेम जैसे कवि को स्थापित करने की चेष्टा करते दिखाई देते हैं। (आजकल, फरवरी 1989)। इसी तरह हिन्दी ग़ज़ल की विकास-यात्रा का गहन अध्ययन कर उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं (पल-प्रतिपल, 1990) और इस क्रम को बढ़ाते हुए समकालीन संवेदना के सन्दर्भ में हिन्दी ग़ज़ल की संवेदना का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करते दिखाई देते हैं। (आजकल, जनू 1991)। उन्होंने विज्ञान की कसौटी पर कृषि कहावतों का अध्यय कर अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है (मंदाकिनी, 1977-78 तथा जनसाहित्य, फरवरी-1980)। डॉ. हरिमोहन के विचारों में स्पष्टता, पारदर्शिता तथा परिपक्वता है, जो उनके व्यापक एवं गहन अध्ययन का परिणाम है। उनकी भाषा में विविधता है। वे प्राय: संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग करते हैं, किन्तु कहीं-कहीं सहज रूप से उर्दू या अंग्रेजी के कुछ शब्द आते चले जाते हैं। उनका वाक्य-विन्यास चुस्त एवं सरल है। नाटकीयता से दूर सूत्रात्मक से लगने वाले छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हुए वे अपने अध्ययन की स्पष्टता, पारदर्शिता और सहजता को सामने रखते हैं। उलझे हुए, मिश्रित या वाक्यों के भीतर वाक्यों की रचना वे नहीं करते। इसका कारण है उनका स्वयं का सहल-सहज व्यक्तित्व तथा विचारों की निर्भ्रान्ति। गुरु गम्भीर व्यक्तित्व का दर्पण होने से उनकी समीक्षा में विचारों का प्राधान्य है, किन्तु एक संवेदनशील कवि एवं कथाकार होने के नाते उनकी समीक्षा में भावपक्ष की उपेक्षा नहीं मिलती। वे विशेष रूप से कवियों के काव्य की समीक्षा करते हुए उनकी संवेदना को सूक्ष्म स्तर पर पकड़ने में सफल रहे हैं। शैली उनकी निजी है, जो उनके व्यक्तित्व की परिचायक है। सीधी-सरल, तर्कशीलता से युक्त और बेवाक। वे प्रमाणपूर्वक अपना मत स्थापित करते हैं। दूसरों के मतों का सहज रहकर खण्डन-मण्डन करते हैं और उनके बीच मे अपने मन का प्रतिपादन करते हैं। उनके विचार क्रमबद्ध श्रृंखला के रूप में आगे बढ़ते चले जाता हैं, तब अन्त में निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। वैज्ञानिक मानवतावादी दृष्टि उनकी समीक्षा को मूल्यवान बनाती है।

सन्दर्भ-

1. डॉ. प्रतापनारायण टंडन, समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ- 57
2. हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 पृष्ठ-94
3. डॉ. दशरथ ओझा, समीक्षाशास्त्र, पृष्ठ-205
4. डॉ. नगेन्द्र-आलोचक की आस्था, पृष्ठ-308
5. डॉ. तारकनाथ बाली, आलोचना: प्रकृति और परिवेश, पृष्ठ-5
6. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ-96
7. डॉ. हरिमोहन, साहित्यिक विधाएँ : पुनर्विचार, पृष्ठ-9
8. प्रो. हरिमोहन, भक्तिकाव्य: पहचान और परख, पृष्ठ-45
9. डॉ. हरिमोहन, प्रतिनिधि हिन्दी निबंधकार, पृष्ठ-45
10. डॉ. हरिमोहन, हिन्दी निबंध के आधार स्तम्भ, पृष्ठ-125